बीसवीं सदी मे भारतीय राजनीति और राज्यपाल का पद

डॉ. शकील हुसैन*
https://orcid.org/0000-0003-1491-6784
अमित कुमार सिंह**
https://orcid.org/0009-0009-8004-5906
Doi : Https://Doi.Org/10.61703/Re8

संक्षेप

राज्यपाल का पद हमारे संविधान में एक महत्वपूर्ण संस्था है। संविधान निर्माताओं द्वारा इसे द्वेध भूमिका सौंपी गई है जिसमें राज्य प्रशासन में संवैधानिक मापदण्डों के संरक्षण और राष्ट्रीय एकता बनाये रखने की अपेक्षा की गई है। प्रायः यह संवैधानिक अपेक्षापूर्ण होती भी है और नहीं भी। फलतः पिछले पांच दशकों के कार्यकरण में राज्यपाल का पद दिनों दिन विवादास्पद होता गया है। यही कारण है कि 1967 के बाद से आज तक भारतीय संघवाद में राज्यपालों की नियुक्ति एवं भूमिका, अध्येताओं और शोधार्थियों के लिए सर्वाधिक रोचक विषय रहा है। राज्यपालों की हालिया नियुक्ति के संदर्भ में यह विषय पुनः महत्वपूर्ण हो गया है।

प्रमुख शब्दावली - संविधान सभा, राज्यपाल एवं संविधान

संविधान सभा, संविधान एवं राज्यपाल

संविधान सभा में जिन विषयों पर सर्वाधिक विस्तृत बहस हुई उनमें से एक राज्यपाल का पद भी था। प्रान्तीय संविधान समिति ने निर्वाचित राज्यपाल का सुझाव दिया था।' (बसु : 1996) तथा यह कहा गया था कि राज्यपाल का निर्वाचन सार्वभौम मताधिकार के आधार पर होना चाहिए। इसके अलावा दो अन्य सुझाव भी दिये गये थे प्रथम राज्यविधान मंडल द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर राज्यपाल का निर्वाचन किया जाए। द्वितीय:- राज्य विधानसभा द्वार नामों का प्रया किया जाए सिमें से किसी एक नाम को राष्ट्रपति स्वीकृति प्रदान करें।" (फड़िया : 1998 पृ 411) किंतु इन सभी तर्कों को अस्वीकार करते हुए संविधान सभा ने संघ द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति का प्रावधान किया। (फड़िया : 1998) निर्वाचित राज्यपाल के विचार को यह कर खारिज कर दिया गय कि- जब संपूर्ण कार्यपालिका शक्ति मंत्रीपरिषद में निहित है तब एक और व्यक्ति जो यह समझता है किउसके पीछे पूरा प्रांता है और इसलिए वह आगे बढ़कर प्रांत के शासन में हस्तक्षेप करता है तो उससे लोकतंत्र विनष्ट हो जाएगा "। (सीएडी जिल्द 7 पृ 455) इस प्रकार संविधान निर्माताओं ने केंद्र द्वारा नियुक्त राज्यपाल के विचार को अन्य सभी विचारों पर तरजीह दी। इसका प्रधान कारण संभवतः यह था कि भारतीय संघ का निर्माण संकटपूर्ण परिस्थितियों में हो रहा था। कई देशी रियासतों ने संघ में शामिल होने से इन्कार कर दिया था। 1935 के अधिनियम के तहत इस प्रकार से संघ निर्माण में देशी रियासतों ने पहले ही शामिल होने से इंकार कर दिया था। हैदराबाद, जूनागढ़ और जम्मू कश्मीर के उदाहरणों के कारण संविधान निर्माताओं के पास इस बात पर

* सहायक प्राध्यापक राजनीति विज्ञान, शासकीय वीवाईटी पीजी स्वायत्त महाविद्यालय दुर्ग, छत्तीसगढ़।
** अतिथि व्याख्याता, शासकीय डॉ वामन वासुदेव पाटणकर कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय दुर्ग, छत्तीसगढ़

विश्वास करने का पर्याप्त कारण था कि इकाईयों पर संघ का यथेष्ट नियंत्रण भविष्य में देश की राजनीतिक एकता बनाए रखने के लिए आवश्यक है। फलतः राज्य प्रशासन के संदर्भ में राज्यपाल को दो दायित्व सौंपे गये हैं। प्रथम राज्य प्रशासन में संविधान के संरक्षक के रूप में, द्वितीय केंद्रीय प्रतिनिधि के रूप में वह राज्य के प्रशासन के संविधानानुसार चलाए जाने के लिए राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी है। इसके अनुरूप संविधान में अनेक प्रावधान किये गये हैं जैसे धारा 163 (2) यह स्पष्ट रूप से घोषित करता है कि "ऐसे मामले में जिनके बारे में संविधान द्वारा अपेक्षित है कि राज्यपाल स्वविवेक से कार्य करे, स्वविवेक के बारे में राज्यपाल का विनिश्चय अंतिम होगा तथा किसी बात की विधि मान्यताइसि आधार पर प्रश्नगत नहीं की जायेगी कि उसे अपने विवेकानुसार कार्य करना चाहिये था या नहीं। " इसके अतिरिक्त धारा 163 (1) के 5. अनुसार राज्यपाल अपने मंत्री परिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं है जैसा कि संघ के बारे में धारा 74 (1) के अधीन राष्ट्रपति अपने मंत्री परिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य है। इसके अतिरिक्त धारा 163 (3) के अनुसार राज्य का मंत्री परिषद राज्यपाल को ऐसे परामर्श देने के लिए अधिकृत नहीं है जिन मामलों में राज्यपाल को स्वविवेक की शक्तियाँ है।

वस्तुतः राज्यपाल की शक्तियों का आधार उसकी स्वविवेक की शक्तियां ही हैं। उसके दो कारण हैं प्रथम जो कि प्रधान कारण हैं यह कि संविधान में कहीं भी राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियां परिभाषित नहीं है। (एआईआर 1974 एसी 2192) और न ही ऐसे मामलों की कोई सूची दी गई है जिन पर राज्यपाल से स्वविवेकानुसार कार्य करने की अपेक्षा की गई है। द्वितीय कारण यह है कि यह स्वविवेक की शक्तियां काफी विस्तृत हैं क्योंकि धारा 163 (1) इस बारे में राज्यपाल को व्यापक अधिकार प्रदान करता है। इस धारा के अनुसार राज्यपाल का स्वविवेकानुसार कार्य करेंगे इस बारे में वह स्वयं तय करेंगे तथा स्वविवेक के बारे में अंतिम विनिश्चय भी उन्हीं का होगा। इसके अतिरिक्त विधायी मामलों में भी वह खुलकर सूवविवेक की शक्तियों का प्रयोग करता है। किसी भी विधेयक को वह अनुमति देता है, अनुमति रोक लेता है, या राष्ट्रपति के विचार रखता है। इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान के आपातकालीन प्रावधान अनुच्छेद 352, 356, 360आपातकालीन परिस्थितियो मे उसकी शक्तियों में अपरिमित वृद्धि करते है।

इस प्रकार राज्यपाल की शक्तियों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि राज्य प्रशासन पर संघीय प्रतिनिधि या अभिय अंकुशकर्ता के रूप में राज्यपाल के पद के विनियोजन के प्रति संविधान निर्माता अधिक संवेदनशील है। जैसा कि धारा 153 की प्रकृति से स्पष्ट है। इसका व्यवहारिक कारण भी था। क्योंकि यदि राज्यपाल को मंत्रीपरिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य कर दिया जाता, तो सम्भव था कि विधान सभा में प्रचण्ड बहुमत वाली कोई सरकार कोई ऐसा कार्य कर सकती थी या विधानसभा में ऐसा प्रस्ताव पारित करा सकती थी, जो देश की राजनीतिक एकता के लिए स्वस्थकर नहीं होता या कोई संवैधानिक संक उत्पन्न हो जाता। कालांतर में इस प्रकार की आशंकाएं सत्य भी साबित हुई। तमिलनाडु विधान सभा ने कुछ पर इस प्रकार के प्रस्ताव पारित किये जो संविधानानुसार उचित नहीं कहे जा सकते थे।"तमिलनाडु में जयललिता एवं राज्यपाल एम. चेन्नारेड्डी के संबंध में इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। विधानसभा का सत्र राज्यपाल के अभिभाषण के बिना ही प्रारंभ कर दिया गया। क्योंकि पिछले वर्ष के अभिभाषण में राज्यपाल ने अपनी ही सरकार के विरूद्ध टिप्पणियां की थी। साथ ही तमिलनाडु सरकार ने अनेक अवसरों पर राज्यपाल के पद को समाप्त करने की सिफारिश की है. इसी प्रकार जम्मूकश्मीर का अनुभव बताता है राज्यशासन पर संधीय नियंत्रण कदाचित आवश्यक भी है।

राज्यपाल का पद : कार्यकरण

केन्द्र राज्य संबंधों में राज्यपाल का पद 1957 के बाद ही विवादास्पद बना। क्योंकि 1957 तक देश में एक दलीय सरकारें थी। फलत: केन्द्र राज्य संबंध कांग्रेस पार्टी के अन्दरूनी मामले की हैसियत रखते थे। यद्यपि कतिपय मामलों में इसके पूर्व भी राज्यपाल का पद विवादास्पद हो चुका था। 1967 में चौथे आम चुनाव को मतपत्रों के माध्यम से क्रांति की संज्ञा दी जाती है। (फड़िया : 1998) क्योंकि चौथे आम चुनाव के बाद कई राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारें स्थापित हुई। फलतः 1957 के बाद कुछ राज्यपालों ने अत्यंत खतरनाक तरीके से अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर जाकर कार्य किया। (शर्मा एवं यादव : 1986) 1967 से 1972 तक केवल पांच वर्षों में देश में 24 बार सरकारों का पतन हुआ एवं 15 बार धारा 356 का प्रयोग किया गया। (फड़िया : 1998)
वास्तव में 1951 के अब तक सौ से अधिक बार धारा 356 का प्रयोग राज्यों में किया जा चुका है तथा संवैधानिक प्रावधानों के फेल होने के नाम पर राष्ट्रपति शासन लगाया जा चुका है। केवल 1987 तक ही कम से कम 13 मामले ऐसे थे जिनमें राज्य मंत्रीमंडल को विधान सभा में बहुमत प्राप्त था फिर भी धारा 356 का प्रयोग किया गया। इसी प्रकार 15 मामले ऐसे थे जिनमें वैकल्पिक सरकार के गठन का अवसर नहीं दिया गया। (फड़िया एवं फड़िया : 1991) इस प्रकार 1967 के बाद से जब राज्यों में के राज्पालों ने केन्द्रीय एजेण्ट के रूप में अधिक कार्य किया और संविधान के संरक्षक के रूप में कम। फलतः उन्हें राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों को गिराने के लिए केन्द्र के कथित षडयंत्र के तंत्र के रूप में देखा गया। (इकबाल :1967)
1967 से 1976 तक का भारतीय राजनीति का विश्लेषण स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि केंद्र में 1976 तक एक दलीय शासन था और सत्ताधारी दल ने राज्यों की विपक्षी सरकारों के विरूद्ध राज्यपाल के पद का मनचाहा प्रयोग किया। किंतु 1977 में केंद्र में पहली बार गैर कांग्रेसी सरकार बनी। और इस गैर कांग्रेसी सरकार ने 30/4/77 को एक ही दिन में नौ कांग्रेस शासित राज्यों की सरकारों को बहुमत के बावजूद बर्खास्त कर दिया। " वापस सत्ता में आने पर कांग्रेस ने ठीक इसी प्रकार 6/6/80 को जनता पार्टी शासित नौ राज्यों की सरकारों को बर्खास्त कर दिया। (फड़िया एवं फड़िया : 1991) 1980 के बाद का राजनीतिक विकास यह बताता है कि लगभग प्रत्येक दल ने राज्यपाल के पद का दुरूपयोग करने की कोशिश की है। कांग्रेस ने गैर कांग्रेसी दलों के विरूद्ध और गैर कांग्रेसी दलों ने कांग्रेस के विरूद्ध। यहीं नहीं संविद सरकारों के वर्तमान दौर में जबकि क्षेत्रीय दल केंद्रीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, तब क्षेत्रीय दलों ने भी राज्य राजनीति में अपने विरोधियों के विरूद्ध धारा 356 के प्रयोग करने के लिए सरकार पर दबाव डाला। उदाहरण स्वरूप 1995 में 13 महीनों की बाजपेयी सरकार के कार्यकाल में जयललिता ने लगातार सरकार पर दबाव बनाए रखा कि वह तमिलनाडु की डी. एम. के. सरकार के विरूद्ध धारा 356 का प्रयोग करें। इसी प्रकार की मांग ममता बनर्जी पश्चिम बंगाल एवं समता पार्टी तथा जनता दल बिहार के संदर्भ मे करते रहे। इसी प्रकार बिहार में चुनाव के पश्चात 125 सीटों के साथ राष्ट्रीय जनता दल सबसे बड़े दल के रूप में उभरा लेकिन राज्यपाल सुंदरसिंह भंडारी ने नितीश कुमार को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जो कि विधान सभा में अपना बहुमत सिद्ध नहीं कर सके।

उक्त उदाहरणों से इस बात को बल मिलता है कि देश के विभिन्न राजनीतिक दलों ने राज्यपाल के पद और अधिकारों का अपनी अपनी सुविधा के लिए प्रयोग करने की कोशिस की है। केंद्र राज्य संबंधों में राज्यपाल के पद के संदर्भ में समस्या दो मूल रूपों में प्रकट होती है :-

1.राज्यपालों की नियुक्ति

2. पद का दुरुपयोग।

1. जहां तक राज्यपालों की नियुक्ति को प्रश्न है तो कई गलत परम्पराओं की नींव डाली गई और राज्यपाल के
कार्यकाल के संदर्भ में संवैधानिक प्रावधानों का दुरूपयोग किया गया। इस संदर्भ में -

क. राज्यपाल के पद पर सत्ताधारी दल के पराजित उम्मीदवारों या क्षेत्रीय राजनीति को संतुलित करने के लिए राज्य राजनीति के नेताओं तथा इसी प्रकार के अन्य लोगों की नियुक्ति कर राज्यपाल के पद को समायोजन पद (एकामुडेशन पोस्ट) बना दिया।

ख. रोमेश भंडारी, प्रभात कुमार, पी. सी. एलेक्जेण्डर जैसे नौकरशाहों की नियुक्ति ने इस पद को राजनीतिक कृपापारिता के अवसर के रूप में प्रस्तुत किया।

ग. प्राय: राज्यपालों का तबादला नौकरशाहों की तरह किया गया और विपक्षी सरकारों की नकेल कसने के लिये केन्द्र के प्रति प्रतिबद्ध लोगों की नियुक्ति की गई।

2. जहां तक पद के दुरूपयोग का प्रश्न है तो राजनीतिक हमाम में सभी दल एक जैसे हैं। एक भी दल ऐसा नहीं है जो यह कह सके कि उसने राज्यपाल के पद के दुरूपयोग का प्रयास नहीं किया। इस संदर्भ में देखा जाए तो मूल समस्या न तो राज्यपालों का व्यक्तित्व है, न धारा 356 या अन्य प्रावधान। मूल समस्या है टूषित राजनीतिक संस्कृति और दूषित दल प्रणाली का विकास।

निष्कर्ष

केंन्द्र राज्य संबंध में राज्यपाल के पद के संदर्भ में अब तक के निदानात्मक प्रयास प्रायः औपचारिक रहे हैं और संवैधानिक प्रावधानों तथा राज्यपालों की नियुक्ति के इर्दगिर्द ही घूमते रहे हैं। इस संबंध में सबसे गहन और बड़ा प्रयास सरकारिया आयोग के रूप में सामने आया। इसके अलावा प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशें राजा मन्नार समिति विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रस्ताव आदि आते रहे हैं। बोम्मई केस सहित अनेक अवसरों पर सर्वोच्च न्यायालय ने भी इस पर अपने विचार व्यक्त किये हैं और दिशा निर्देश दिये हैं। लेकिन सर्वाधिक मूल्यवान प्रश्न यह है कि इन दिशा निर्देशों, सिफारिशों और संवैधानिक प्रावधानों का पालन किसे करना है? उन राजनीतिक दलों को जो केन्द्र एवं विभिन्न राज्यों में सत्ता संभालते हैं। अब तक के राजनीतिक विकास से यह स्पष्ट है कि प्रायः राजनीतिक दलों ने जन आकांक्षाओं की अवहेलना की है, दलीय हितों को राष्ट्रीय हितों पर वरीयता दी है, सत्ता में बने रहने के लिए संवैधानिक प्रावधानों का खुलकर दुरूपयोग किया है, अपवित्र और अवसरवादी गठबंधन किये हैं। अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि संविधान का कार्यकरण वैसा ही होगा जैसे व्यवस्थापक होंगे।

संवैधानिक संशोधनों, आयोगों के गठनों से राज्यपाल के पद का दुरूपयोग नहीं रोका जा सकता। इसके लिए राजनीतिक दलों को आत्मचिंतन करना होगा। क्योंकि प्रजातंत्र में न केवल जनता बल्कि संविधान की अभिव्यक्ति भी राजनीतिक दलों के माध्यम से होती है। क्योंकि वे ही सरकार को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। इसलिए यदि राजनीतिक दल दलीय स्तर पर प्रजातांत्रिक मूल्यों और संविधान में आस्था व्यक्त नहीं करेंगे तो संविधान का परिचालन असंभव हो जायेगा। यही कारण है कि न केवल राज्यपाल बल्कि स्पीकर एवं राज्य लोक सेवा आयोगों एवं संघ लोक सेवा आयोग जैसी अन्य संवैधानिक संस्थाएं भी पक्षपात के आरोप लगते रहे हैं। इसलिए सर्वप्रथम आवश्यकता दलीय प्रणाली में सुधार एवं देश के संविधान एवं कानून में आस्था मजबूत करने की है।

संदर्भ

- बसु डी (1996) : *भारत का संविधान : एक परिचय,* प्रेंटिस हाल ऑफ इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली 1996, पृ. 226.https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.103074
- फड़िया बी. (1998) : *भारतीय शासन एवं राजनीति*, साहित्य भवन, आगरा पृ.411.https://library.niti.gov.in/cgi-bin/koha/opac-detail.pl?biblionumber=49758
- सी.ए.डी (संविधान सभा बहस) जिल्द 7 पृष्ठ 455 https://eparlib.nic.in/bitstream/123456789/763271/1/cad_17-10-1949.pdf
- भारतीय संविधान भारत सरकार, विधि न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय, राजभाषा खंड 1991 संस्करण, पृष्ठ 41.https://legislative.gov.in/constitution-of-india/
- शमशेर बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1974 एस. सी. 2192.https://main.sci.gov.in/jonew/judis/5928.pdf
- डॉ. शर्मा आर एवं डॉ. यादव एस (1986) : *केंद्र राज्य संबंध, हिन्दी* माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्व विद्यालय , नई दिल्ली. https://www.du.ac.in/index.php?page=Directorate-of-Hindi-Medium-Implementation
- फड़िया बी एवं फड़िया एम (1991) - *केन्द्र राज्य संबंध*, साहित्य भवन, आगरा, पृष्ठ 181.
- इकबाल नारायण (1967) : ट्वीलाइट आर डान *पॉलिटिकल चेंज इन इंडिया,* 1967-71 पृष्ठ 94. https://catalogue.nla.gov.au/catalog/338753